CHETANA
International Journal of Education
(CIJE)
Peer Reviewed/Refereed Journal
(ISSN: 2455-8729 (E) / 2231-3613 (P))
Impact Factor
SJIF 2023 - 7.286

आलेख

Received 20.01.2023 Reviewed 28.01.2023 Accepted 15.03.2023

# प्राचीन भारत में चिकित्सा पद्धति का इतिहास

* डॉ उमेश झा

**मुख्य शब्द -** चिकित्सा पद्धति, आयुर्वेद, औपनिवेशिक, संहिता, औषधि, औषधालय, आपूर्ति, व्यवहारिक, देशी, उपमहाद्वीप, उत्पत्ति, प्रतिकार, वैज्ञानिक, सार्वजनिक, सर्वश्रेष्ठ आदि.

**सारांशः**

*19वीं सदी में औपनिवेशिकरन की प्रक्रिया के साथ आधुनिक एलोपैथिक चिकित्सा का भारत में तेजी से प्रचार प्रसार हुआ। परंतु पूर्व औपनिवेशिक युग में भारत में चिकित्सा संबंधी कई देशी पद्धति प्रचलित थी जिसमें आयुर्वेद का स्थान सबसे महत्वपूर्ण था। चरक संहिता और सुश्रुत संहिता जैसे आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रंथों की रचना हुई और बीमारियों की पहचान, उपचार के तरीकों एवं औषधीयों के ज्ञान में निरंतर वृद्धि होती गई।*

## प्रस्तावना

पूर्व औपनिवेशिक भारत में और विशेष रूप से प्राचीन भारत में लोगों की चिकित्सा संबंधी जरूरतों की आपूर्ति मुख्यतः देशी चिकित्सा पद्धतियों द्वारा होती थी। ये पद्धतियां थीं – आयुर्वेद, यूनानी, सिद्धा और लोक चिकित्सा। इनमें आयुर्वेद सबसे महत्वपूर्ण था जिसका प्राचीन भारत में निरंतर विकास हो रहा था। आयुर्वेद न सिर्फ भारत में बल्कि भारतीय उपमहाद्वीप के बाहर भी लोकप्रिय हो रहा था। आयुर्वेद के ज्ञान और ग्रंथों का भारतीय भाषाओं के अलावा अरबी, फारसी एवं तिब्बती जैसी विदेशी भाषाओं में भी अनुवाद होने लगा था।

## चिकित्सा पद्धति के रूप में आयुर्वेद का उद्भव

आयुर्वेद का शाब्दिक अर्थ है ''आयु बढ़ाने का ज्ञान'' आयुर्वेद अपनी उत्पत्ति का संबंध वेदों से स्थापित करता है हालांकि हमारे पास इसे प्रमाणित या अप्रमाणित करने का कोई पुख्ता सबूत नहीं है। ऋगवेद में अश्विन को देवताओं का कुशल वैद्य कहा गया है जो अपने औषधियों से रोगों का निदान करते हैं। अथर्ववेद में आयुर्वेद के

सिद्धांत तथा व्यवहार संबंधी कुछ जानकारी मिलती हैं। रोग, उसके प्रतिकार तथा औषधि संबंधी कई उपयोगी एवं वैज्ञानिक तथ्यों का विवरण इसमें दिया गया है।

देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय ने यह तर्क दिया है कि आरंभिक चरण में आयुर्वेद और भारतीय चिकित्सा शास्त्र से संबंधित साहित्य मुख्यत: लोक-धार्मिक परंपरा का एक अंग रहा होगा जो कालांतर में ब्राह्मणवादी वैदिक शास्त्र का अंग बन गया। जबकि उनसे अलग केनेथ जी. जाइस्क का मानना है कि आयुर्वेद का विकास बौद्ध भिक्षुओं द्वारा व्यवहार में लाए गए चिकित्सा पद्धतियों द्वारा हुआ जो आगे चलकर बौद्ध विहारों की सीमाओं से बाहर निकल आया और सार्वजनिक रुप से अपनाया जाने लगा।

**प्राचीन भारत मे आयुर्वेद का अध्ययन**

वास्तव में बौद्ध युग में भारत में बड़े पैमाने पर औषधि शास्त्र का अध्ययन किया जाने लगा था। जातक ग्रंथों से पता चलता है कि तक्षशिला विश्वविद्यालय में आयुर्वेद के प्रसिद्ध विद्वान थे और दूर दूर से छात्र आयुर्वेद के अध्ययन के लिए वहां आते थे। आयुर्वेद के प्रसिद्ध विद्वान के रूप में 'जीवक' का उल्लेख मिलता है जिसे बिम्बिसार ने अपना राजवैद्य नियुक्त किया था। जीवक ने तक्षशिला में शिक्षा ग्रहण की थी और उत्तरी भारत में उसकी प्रसिद्धि दूर दूर तक फैली हुई थी। पतंजलि ने अपने महाभाष्य में वात, पित्त और श्लेषम नामक शरीर के तीन विकारों का उल्लेख किया है। उसने पामन (खुजली), गडु(कंठमाला), गडुशिरस (सिर का गुल्म) और दद्रु (कोढ़) जैसे कई रोगों का उल्लेख किया है। उसने कुछ उपचारों का भी विवरण दिया है। जैसे कि गुर्दे की पीड़ा के निवारण के लिए चावल का मांड सेवन करना चाहिए और चित्त शान्ति के लिए घी तथा श्लेषम निवारण के लिए मधु का सेवन करना चाहिए। कौटिल्य के ''अर्थशास्त्र'' से पता चलता है कि मौर्यकाल में भी चिकित्सा शास्त्र का अध्ययन काफी उन्नत अवस्था में था।

**चरक संहिता और सुश्रुत संहिता में वर्णित आयुर्वेदिक चिकित्सा का स्वरूप**

वास्तव में प्राचीन भारत में चिकित्सा शास्त्र के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति दूसरी सदी ईसापूर्व से लेकर पांचवीं सदी ईसवी के बीच में हुआ जब चरक और सुश्रुत जैसे चिकित्सकों का आविर्भाव हुआ जिन्होंने आयुर्वेद की सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक ''चरक संहिता'' और ''सुश्रुत संहिता'' की रचना की। आयुर्वेद के इतिहास में इन ग्रंथों को सबसे महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। चरक को कार्यचिकित्सा का जनक भी कहा जाता है। माना जाता है कि वे प्रसिद्ध कुषाण सम्राट कनिष्क के राजवैद्य थे। उनकी कृति ''चरक संहिता'' आयुर्वेद पर लिखा गया सबसे प्राचीन प्रमाणिक ग्रंथ है। इस ग्रंथ के मुख्य पाठ से पता चलता है कि आयुर्वेद का ज्ञान सबसे पहले अग्निवेश

नामक आचार्य को ऐतरेय नामक ऋषि से मिला था और बाद में उनसे चरक ने इसे प्राप्त किया। ग्यारहवीं सदी के अरब विद्वान अलबेरूनी ने चरक संहिता को चिकित्सा शास्त्र पर लिखा गया सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ बतलाया है।

चरक संहिता 8 खंडों एवं 120 अध्यायों में बंटा हुआ एक विस्तृत ग्रंथ है। इसका प्रथम खंड अर्थात सूत्र ग्रंथ औषधि ज्ञान से संबंधित हैं। 'निदान' नामक दूसरे खंड में आठ महत्वपूर्ण बिमारियों के कारणों की व्याख्या की गई है। 'विमान' नामक तीसरे खंड में स्वाद, पौष्टिकता, चिकित्सीय जांच और चिकित्सा संबंधी अध्ययन संकलित हैं। 'शरीर' नामक चौथे खंड में मानव का शरीर विज्ञान, भ्रूण विज्ञान और दर्शन को शामिल किया गया है। अन्य खंडों में बीमारी के लक्षण, इंद्रिय चिकित्सा कल्प और सामान्य उपचार या सिद्ध जैसे विषय लिए गए हैं।

**एक आदर्श अस्पताल कैसा होना चाहिए**

चरक संहिता में एक आदर्श अस्पताल कैसा होना चाहिए और उसे किस प्रकार के स्वास्थ्य कर्मियों एवं औषधीयों तथा वस्तुओं से युक्त होना चाहिए के बारे में भी विस्तार से वर्णन मिलता है। इसमें कहा गया है कि एक आदर्श अस्पताल के लिए सबसे पहले किसी वास्तुकार के निर्देशानुसार एक उपयुक्त भवन का निर्माण करना चाहिए। एक ऐसा भवन जो काफी मजबूत हो, ताकि हवा से बचाव हो सके और साथ ही इसके एक हिस्से को हवादार भी होना चाहिए। इसे धूप, धूंआ,धूल और पानी से सुरक्षित होना चाहिए। इसे अवांछनीय ध्वनि, अनुभूति, दृश्य, स्वाद और महक से दूर होना चाहिए। इस, भवन में हमेशा जल की आपूर्ति होनी चाहिए। साथ ही इसमें ,खल्ल-मूसल होना चाहिए, एक शौचालय होना चाहिए, स्नान के लिए और रसोई के लिए अलग अलग कक्ष होने चाहिए।

**अस्पताल में काम करने वाले स्वास्थ्य कर्मियों का उल्लेख**

अस्पताल के लिए उपयुक्त स्वास्थ्य कर्मियों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि चावल और शोरबा बनाने के लिए दक्ष रसोइए, स्नानागार के परिचारक, अंगमरदक, मरीज को उठाने -बैठाने वाले परिचारक एवं जड़ी-बूटी को पीसने वाले लोगों का चयन किया जाना चाहिए। यह भी कहा गया है कि स्वास्थ्य कर्मियों को अच्छे स्वभाव वाला, हमेशा साफ़ -सुथरा रहने वाला और मरीजों से अच्छा व्यवहार करने वाला होना चाहिए। इस बात पर विशेष जोर दिया गया है कि उन्हें निष्ठावान, धर्मात्मा और व्यवहारिक होने चाहिए ।

अस्पताल में मरीजों के इलाज के लिए आवश्यक औषधियों के साथ साथ उन तमाम तरह की वस्तुओं की आपूर्ति पर जोर दिया गया है जिनकी जरूरत इलाज के दौरान कभी भी हो सकती है। सामान्य आपूर्तियों के अतिरिक्त आपातकाल में प्रयुक्त होने वाले साधनों और सुविधाओं की जानकारी भी इसमें दी गई है।

चरक संहिता की तरह सुश्रुत संहिता भी एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें कई कालानुक्रमिक स्तर विद्यमान है। इसका मूल पाठ शल्य चिकित्सा से संबंधित था जिसकी रचना ईसापूर्व अंतिम शताब्दी में की गई थी। लेकिन बाद में पांचवीं सदी तक इसमें लगातार संशोधन किया जाता रहा। वर्तमान में इस ग्रंथ का जो स्वरूप उपलब्ध है वह 6 खंडों में बंटा हुआ है। इसे क्रमशः सूत्रस्थान, निदानस्थान, शरीरस्थान, चिकित्सास्थान, कल्पस्थान और उत्तरतंत्रस्थान के रुप में प्रस्तुत किया गया है। सुश्रुत संहिता का उल्लेख मध्य एशिया में मिली चिकित्सा शास्त्र की एक हस्तलिपि में भी मिलता है।

इस ग्रंथ में विविध प्रकार की शल्य एवं छेदन क्रियाओं का अतिसूक्ष्म विवरण दिया गया है।शुश्रूत ने शल्य क्रिया में प्रयोग होने वाले विभिन्न उपकरणों के नाम भी गिनाए हैं। उन्होंने शल्य चिकित्सा में दीक्षित होनेवाले छात्रों का विवरण भी प्रस्तुत किया है। मोतियाबिंद की शल्य चिकित्सा, पथरी और ब्लैडर का निष्कासन, अंगभंग का उपचार, शरीर में प्रवेश कर गए तीर को बाहर निकालना जैसे शल्य क्रिया के कई तरीकों का इसमें विस्तार से वर्णन किया गया है। सुश्रुत संहिता में प्लास्टिक शल्य चिकित्सा पर भी संक्षेप में वर्णन मिलता है।शरीर के किसी हिस्से के स्कीन को ठीक करने के लिए ग्राफ्ट विधि का तरीका भी इसमें वर्णित है जिसे आधुनिक विज्ञान की भाषा में □राइनो प्लसिटी'' कहा जाता है। इस संहिता में किसी शव का मानव शरीर के अध्ययन के लिए किए जाने वाले उपयोग पर भी चर्चा की गई है।

**आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति की मूलभूत अवधारणा**

आयुर्वेद में चिकित्सा की मूलभूत अवधारणा दोष, धातु और मल पर आधारित है। इस चिकित्सा पद्धति में दोष एक अर्धतरल अवयव है जो तीन प्रकार के होते हैं – वात, पित्त और कफ या श्लेष्मा। ये अर्धतरलीय पदार्थ समूचे शरीर में धूमते रहते हैं। ये तीन दोष शरीर के सात अवयवों के साथ अंत:क्रिया करते रहते हैं, उसके अतिरिक्त ये रक्त, मांस, वसा, हड्डी, वीर्य तथा शरीर से निकलने वाले उत्सर्ज पदार्थों के साथ प्रतिक्रिया करते हैं। इसके चलते मानव शरीर में उपस्थित द्रव असंख्य पाइपों, नलिकाओं, तंत्रिकाओं के माध्यम से सारे शरीर में धूमता रहता है।

आयुर्वेद का मानना है कि हमारे शरीर में बीमारियां तब आती हैं जब इन तीनों दोषों में से किसी एक दोष का अन्यत्र विकास हो जाता है अथवा दोष अपने निर्धारित स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाते हैं। बीमारियों को आयुर्वेद में मुख्यत: तीन कोटियों में बांटा गया है: वैसी ब्याधियां जिनका उपचार हो सकता है, वैसी ब्याधियां जिनके प्रभाव को कम किया जा सकता है तथा वैसी ब्याधियां जिनका उपचार नहीं हो सकता है।

## आयुर्वेद में बीमारियों की पहचान

आयुर्वेद में बीमारियों की पहचान संबंधी चिकित्सीय विधियों में अनुभूति और अनुमान दोनों के महत्व पर जोर दिया गया है।सुश्रूत ने इस संबंध में सुझाव दिया है कि चिकित्सक को मरीज का स्पर्श, चिकित्सा की दृष्टि और मरीज़ से पूछे गए प्रश्नों जैसे तीनों तरीकों पर निर्भर रहना चाहिए। परंतु इसके साथ साथ जो सबसे आवश्यक चीज है वह है चिकित्सकों द्वारा चिकित्सा के लिए अपने पांचों इंद्रियों का इस्तेमाल करना। आयुर्वेद द्वारा निर्देशित उपचारों में पथ और अपथ भोजन पर बहुत बल दिया गया है। आयुर्वेद में भोजन, यौगिक क्रिया और चिकित्सा तीनों के समायोजन को स्वस्थ शरीर का आधार बतलाया गया है।

## आयुर्वेद पर प्राचीन काल में लिखे गए अन्य उपयोगी ग्रंथ

चरक संहिता और सुश्रुत संहिता के अलावा भी प्राचीन भारत में आयुर्वेदिक चिकित्सा के क्षेत्र में कई उपयोगी ग्रंथों की रचना हुई। वागभट्ट द्वारा लिखा गया अष्टांग हृदय'' इसी विषय पर लिखा गया एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है जो तकरीबन 600 ईसवी के आसपास लिखा गया था। इसके अलावा अष्टांगहृदय संहिता और रसायन से संबंधित रसरत्न समुच्चय जैसे ग्रंथों की भी रचना हुई। इसी समय पहली बार पशु चिकित्सा विज्ञान पर विस्तृत कृतियां लिखीं गयीं जिनका संबंध मुख्यत: घोड़ों और हाथियों से था, और ये दोनों ही सेना के आवश्यक अंग थे। भारतीय पशु चिकित्सा ज्ञान का प्रसार पश्चिम की ओर हुआ तथा पश्चिम एशिया के चिकित्सकों ने इसमें विशेष रूचि ली। अन्य लोगों के अलावा एक फारसी-चिकित्सक भारतीय औषधि शास्त्र के अध्ययन के लिए छठी शताब्दी में भारत आया था। मध्य एशिया में कुच नामक स्थान में योगशतक'' नामक एक और ग्रंथ भी मिला है जो लगभग सातवीं शताब्दी का है। इस काल में स्त्रियों और बच्चों के बीमारियों के विषय में भी विशेष पुस्तकों की रचना की गई थी। इसका श्रेय पाश्वक को जाता है। उनके द्वारा लिखा गया एवं संग्रहित किया गया आख्यान अत्यंत महत्वपूर्ण है। 14वीं शताब्दी का आयुर्वेद पर लिखा गया एक महत्वपूर्ण ग्रंथ शार्गधारा संहिता'' है जिसमें दिए गए नुस्खों का प्रयोग आजकल भी आयुर्वेदिक दवाई बनाने वाली कंपनियों द्वारा किया जा रहा है।

## निष्कर्ष

प्राचीन भारत में चिकित्सा संबंधी ज्ञान का निरंतर विकास हो रहा था। अलग अलग इलाकों में इलाज के लिए अलग अलग तरह के साधनों का इस्तेमाल होने लगा था परन्तु इसमें आयुर्वेद का स्थान सबसे महत्वपूर्ण था। यही कारण है कि आज भी हमारे पास आयुर्वेदिक चिकित्सा संबंधी परंपराएं और पुस्तकें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। आयुर्वेद का प्रभाव भारत ही नहीं वल्कि भारतीय उपमहाद्वीप के बाहर के देशों पर भी पड़ने लगा

था। इसका प्रमाण यह है कि आयुर्वेद के चिकित्सीय ज्ञान एवं ग्रंथों का बड़े पैमाने पर अरबी, फारसी और तिब्बती भाषाओं में अनुवाद किया गया। ऐसा भी प्रमाण मिलता है कि यूरोप के वनस्पति शास्त्र के ज्ञान में भारतीय आयुर्वेद के विचारों का योगदान रहा।

**संदर्भ ग्रंथों की सूची**

1. के. एन. पणिक्कर, औपनिवेशिक भारत में सांस्कृतिक और विचारधारात्मक संघर्ष, दिल्ली 2009, पृष्ठ 152-153
2. उपिन्दर सिंह, प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, दिल्ली,2017, पृष्ठ 584-586
3. डॉ. बैजनाथ पुरी, भारतीय संस्कृति के मूल तथ्य, लखनऊ,1991, पृष्ठ 143-144
4. रोमिला थापर, भारत का इतिहास, दिल्ली,1975 पृष्ठ 128-129
5. दीपक कुमार एवं रॉय मैकलॉयड (संपादक), प्रौद्योगिकी और भारत में अंग्रेजी राज, दिल्ली, पृष्ठ 98
6. देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय, जानने की बातें , दिल्ली,2006
7. देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय, साइंस एंड सोसायटी इन एनशिएंट इंडिया, कलकत्ता 1977
8. ए. एल. बैशम, प्रैक्टिस आफ मेडीसिन इन एनशिएंट एंड मेडविएल इंडिया, चार्ल्स लेस्ली (सं.), एशियन मेडिकल सिस्टम: ए कम्पेरेटिव स्टडी, बर्कले, 1976 पृष्ठ 40
9. ए. अब्दुल हमीद, फिजिशियन -आथर्स आफ ग्रीको-अरब मेडिसिन इन इंडिया, दिल्ली, तिथि उल्लेख नहीं
10. एम. अली, आयुर्वेदिक ड्रग्स इन यूनानी मेटिरिया मेडिका," एनशिएंट साइंस लाइफ, अप्रैल,1990, पृष्ठ 191-200
11. चार्ल्स लेस्ली, दि एंबिग्युटीज आप मेडिकल रिवाइवलिज्म इन माडर्न इंडिया," लेस्ली (सं), एशियन मेडिकल सिस्टम, पृष्ठ 356.

***Corresponding Author***
*** डॉ उमेश झा**
एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग
रामानुजन कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
*Email-umeshjha5@gmail.com, Mobile-9582187286*